UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180760

UNIVERSAL
LIBRARY

फांसी !

विक्टर ह्यूगो की Sentence to Death नामक
पुस्तक का अनुवाद

अनुवादक
श्री कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

प्रकाशक,
हिन्दी मन्दिर,
प्रयाग।

छठी बार : १९४६
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक,
अमरचंद्र,
राजहंस प्रेस, दिल्ली।

फांसी !

: १ :

फांसी !

पांच हफ्ते से केवल यही चिन्ता कर रहा हूं। दिन-रात मैं अकेला रहता हूं। अकेला ही मृत्यु का ठंडा स्पर्श अनुभव कर रहा हूं। मेरे गले को मानों किसी ने रस्सी से बांध रक्खा है !

लेकिन हमेशा से मैं ऐसा नहीं था। अभी बहुत दिन न हुए होंगे, मैं भी एक साधारण मनुष्य की भांति ही स्वतन्त्र था। प्रतिदिन, प्रति घण्टे, प्रति मुहूर्त्त मैं स्वाधीन रहता था। मेरा मन भी ऐसा ही स्वाधीन था। मेरा तरुण निर्मल मन एक नशे में विभोर रहता था। नियमहीन, शृङ्खलाहीन, बाधाहीन जीवन की कल्पना मुझे उन्मत्त बना देती थी।

सुन्दरी किशोरियां, जय-पराजय, आनन्द और उज्ज्वल रंग-शालायें, सन्ध्या की छाया में सुकुमारियों के बाहु-बन्धन में स्वप्नमय परिक्रमण—ऐसे ही सुख के साथ मेरे दिन कटते थे। चिन्ता की गति थी स्वाधीन; और स्वयं तो स्वाधीन था ही !

परन्तु आज ? आज मैं क़ैदी हूं। सांकलों में जकड़ा हुआ, क़ैदखाने का रहने वाला क़ैदी हूं। मन के भीतर भी वैसा ही अन्धकार

है, जैसा कि क़ैदखाने के अन्दर। एक भीषण निष्ठुर हत्या-कलङ्क की कालिमा मुझ को घेरे हुए है। अब और कोई चिन्ता मन में नहीं उठती। केवल एक चिन्ता दिन-रात मन में जाग रही है—फांसी की रस्सी से मेरा प्राण-दण्ड!

अशरीरी छाया की भांति यही चिन्ता मुझे घेरे हुए है। और किसी बात को सोचने का अवसर ही कहां? मैं तो चाहता हूं कि मैं भूल जाऊं—परन्तु, हाय, सब व्यर्थ है! उसके कठिन स्पर्श से एक मिनिट को निस्तार नहीं मिलता।

लाल आंखें निकालकर मानों दिन-रात वह मेरी ही ओर देख रही है। मेरे चारों ओर न जाने कौन विषाद-रागिनी गाता रहता है और कभी-कभी किसी की तीव्र हंसी बिजली की भांति मेरी आंखों के सामने खिल उठती है। कारागृह की खिड़की के उधर—ऐं·····! वे किसकी आंखें हैं? मौत की! प्रेत की भांति वह मेरे चारों ओर घूम रही है! हाथ में रस्सी····! न; मैं पागल हो जाऊंगा।

अकस्मात् नींद टूट गई—मालूम हुआ है, किसी ने अभी-अभी मेरे मुख पर से अपनी दृष्टि हटा ली। क्या यह स्वप्न है? जेलख़ाने के कठिन पत्थरों पर, दीप की क्षीण शिखा में, पहरेदारों की नीरव मूर्ति में खिड़की के किनारे-किनारे—न जाने कौन घूमता रहता है। उसकी जबान पर केवल वही एक शब्द—फांसी!

: २ :

अगस्त का महीना है। निर्मल, स्निग्ध और सुन्दर प्रभात है। आज तीन दिन हुए, मेरे मुकदमे का विचार शुरू हुआ है। इन्हीं तीन दिन के अन्दर मेरा नाम चारों ओर मशहूर हो गया है। आलसियों के दल—जिन्हें काम से एक मिनट की फुर्सत नहीं मिलती—आज मुझे देखने के लिए अदालत के आंगन में भीड़ किये खड़े हैं। मृत-देह के चारों ओर जिस प्रकार गिद्ध लोलुप-दृष्टि से डटे रहते हैं, उसी प्रकार वे भी मेरे लिए आज चंचल और अधीर हो रहे हैं।

पहरेवालों का यह वीर-दर्प और दर्शकों की इस प्रकार की निरीह मूर्ति, ओह, यह मुझे असहनीय मालूम होता है!

पहली दो रात तो मुझे नींद ही नहीं आई। हृदय में एक व्याकुल आर्तनाद का अनुभव होता रहा। यह गंभीर आशंका किस की थी? तीसरी रात को क्लान्त होकर निद्रा का मोह-स्पर्श पहले-पहल अनुभव किया। आवेशमयी निद्रा—आह, वह सब व्यथा को भुला देती है। पहरेदार की आवाज़ से नींद खुल गई। पैर में भारी जूता, हाथ में चाबियों का गुच्छा—ऐसा लगता था, मानो यमदूत हो!

मैंने आंखों को मसलकर चारों ओर देखा। कारागार की मज़बूत काली दीवार! छत के नीचे हवादान में से आसमान का कुछ हिस्सा नज़र आया। सूर्य का प्रकाश उस आसमान पर खिल रहा था। सचमुच मैं इस प्रकाश को अत्यन्त प्यार करता हूं।

मैंने कहा, "ओह! कैसा सुन्दर दिन है!"

पहरेदार चुप रहा। मेरी बात का उत्तर देना शायद उसने ज़रूरी न समझा। फिर अकस्मात् न जाने क्या सोच कर उसने उत्तर दिया, "हां, बड़ा सुन्दर दिन है।" पत्थर की भांति मैं निश्चल, निष्पन्द हो गया। चेतना लुप्त हो गई। मैं उसी हवादान की ओर देखता रहा। फिर कहा—"ओह, बड़ा सुन्दर सवेरा है।"

उसने कहा—"हां! लेकिन बाहर तो तुम्हारा सब इन्तज़ार कर रहे हैं।"

उसका यह उत्तर! मकड़ी के जाल की भांति इस उत्तर ने मुझे पुरानी चिन्ता के जाल में घेर लिया। इसी समय मेरी आंख के सामने खड़ा हो गया—वह निर्मम, हृदयहीन रक्त का प्यासा विचारक, उसका अप्रसन्न गम्भीर मुख और लोभी गवाहों का दल, काले गाउन में पण्डित वकीलगण, चित्र की भांति सज्जित पहरेदार, चपरासी और वह आवारा दर्शकों का समूह!

मेरी सारी देह में आग लग गई। बदन कांपने लगा। पैर भी कांप रहा था। पहरेदार मुझे पकड़ कर बाहर खींच लाया। बाहर की हवा से बहुत-कुछ शान्ति मिली और दुश्चिन्ता मिट गई। सिर के ऊपर विस्तृत नीला आकाश—ठण्डी धूप का मधुर स्पर्श, चारों ओर

पक्षियों का कलरव, दूर पर पेड़ों की छाया—अहा ! यह संसार इतना सुन्दर है, यह आज ही मालूम हुआ।

उसके बाद फिर कचहरी की दम घोटने वाली हवा। जीवन के बाद मृत्यु,—वह भी शायद ऐसी ही भीषण होगी। मुझे देखते ही चारों ओर कुछ शोर-सा होने लगा। काना-फूसी, कागज़ों की खरखर आवाज़, जूतों की चरमराहट, इन सबके मिलने से एक अजीब ही तरह की मिश्र-रागिनी की सृष्टि हो गई। मुझे देखने के लिए अबतक सब धीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे आते ही उनको कुछ आराम मिला। कैसी निर्लज्ज हृदयहीनता ! एक आदमी की फांसी का हुक्म सुनने के लिए इन पशुओं को कैसा कुतूहल !

चारों ओर शान्ति निस्तब्ध ! आंधी आने के पहले प्रकृति जिस प्रकार शान्त हो जाती है, ठीक उसी भांति ! अभी आंधी आवेगी ! एक भयानक आंधी आवेगी ! मेरी हड्डियों को पीस कर, नस-नस को चबा कर, जीवन को सहस्र खण्ड में विदीर्ण कर तब यह आंधी ठहरेगी। आज मेरे अपराध का दण्ड-विधान होगा।

दण्ड ! कौन किसको दण्ड देगा ? कौन किसके अपराध का विचार करेगा ? मैं चुपचाप खड़ा हुआ इन्तज़ार कर रहा था। हृदय रह-रह कर कांप उठता था। कैसा गम्भीर विराट स्पन्दन था। उसका धक्-धक् शब्द शायद बन्दूक के शब्द से भी अधिक भयानक था।

मेरे मन में उस समय कोई भय नहीं था। कमरे की खिड़की खुली हुई थी। मैं आकाश की ओर देख रहा था। वहां असंख्य छोटे-छोटे पक्षी उड़ रहे थे। शान्त और मधुर हवा, माता की भांति

ही मेरे ललाट पर अपना शीतल हाथ फेर रही थी। बज की आंखें मानो नींद से भरी हुई थीं। उस ओर नज़र पड़ते ही मैं सोचता था, "यह अभिनय क्यों?"

बाहर दूकानदार लोग हंस रहे थे। उन्हें मेरा ख्याल ही नहीं। वे अपनी ही हंसी और बातों में मग्न हैं। हंसी और बातों से उन्हें कभी फुर्सत नहीं मिलती। कैसे निर्बोध हैं ये दूकानदार लोग! मूर्ख हैं!

चारों तरफ इतना आनन्द! इतनी शोभा! इस समय मृत्यु की बात सोचना निठुरता है—पाप है! यह स्निग्ध वायु, ऐसी दिव्य उज्ज्वल प्रसन्न सूर्य-किरण! इस समय मृत्यु की चिन्ता—कैसी अशोभनीय बात! सूर्य-किरण की भांति आशा की घटा कभी-कभी निराश हृदय में प्रकाश डाल रही थी—आह! यदि आज मैं मुक्त हो जाऊं!

मेरे वकील ने कहा, "उम्मीद!"

कुछ हंस कर मैंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

वकील ने कहा, "मैंने सिद्ध कर दिया है कि घटना अकस्मात् हो गई—फांसी तो हो ही नहीं सकती, हां, आजन्म कारावास—खैर, देखें क्या होता है।"

मैंने कहा—"क्या, कारागार में जन्म भर के लिए बन्दी? नहीं, उससे तो मौत ही अच्छी है।"

हां, मौत भी अच्छी है। मैंने बाहर की ओर देखा! एक पक्षी डाल पर बैठ कर फल को ठुकरा रहा था। कितना आनन्दी जीव है वह! मैं यदि वैसा ही एक पक्षी होता! वैसा ही मुक्त और स्वाधीन होता!

जज उस समय अपनी राय पढ़ रहे थे। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। जीवन और मृत्यु की बात तो मैं उस समय भूल ही गया था। सहसा कान में आवाज आई—'फांसी'। सिर में पसीना आ गया। आंखों के सामने काला पर्दा गिर पड़ा। मैं उस कठघरे से टिककर खड़ा हो गया। शायद जज को कुछ दया आई। उसने पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है?"

कहने को तो बहुत कुछ था। परन्तु बात बढ़ाकर फायदा ही क्या था? और जबान पर मानों ताले पड़ गये थे। दोनों हाथों से मैंने अपने मुंह को ढक लिया। लोग शोर करते हुए कोर्ट के बाहर जा रहे थे। उनके पैरों का शब्द सुनाई दे रहा था। ओफ़, अब उनको कुछ चैन मिला है! काम-काज, विलास-विश्राम सब छोड़कर जो मेरे लिए इतनी दूर आने का कष्ट उठाते थे; मैंने उनको छुट्टी दे दी! वे खुश होकर चले गये।

बहुत देर बाद मेरे मुंह से बात निकली। मैंने कहा—"हुजूर, केवल इतनी दया करें कि फांसी जल्दी हो जाय, बस और कुछ नहीं।"

सारे संसार पर मुझे क्रोध आ गया। वह सदा की भांति ही हंसता रहेगा, आनन्द करता रहेगा। मैं उसको खाली कर जाऊंगा, परन्तु वह इसका अभाव अनुभव नहीं करेगा। हाय, ऐसी सुन्दर पृथ्वी, परन्तु ऐसी निर्दय है! किसी के लिए उसके हृदय में स्नेह नहीं, ममता नहीं, मानों निस्पन्द और कठोर एक जड़-पिण्ड है! यही संसार है और इसी संसार में किसी प्रकार टिके रहने का नाम जीवन है! इससे मृत्यु, हां, वह क्या इससे अधिक कठोर है?

पहरेदार मुझे बाहर ले आये। बाहर दर्शकों का दल उस समय भी मुझे देखने के लिए उन्मत्त था। अरे, इन सब हृदयहीन पशुओं के सिर पर बिजली नहीं गिरती? कैसे प्रेत हैं! पिशाच हैं!

बाहर आकर देखा, कैसा परिवर्तन है! जब इधर से होकर कोर्ट की ओर आया था, उस समय मैं भी और सबों की तरह जीवित था। और अब? अब तो मानों मेरी मृत-देह को कोई खींचे ले जा रहा है। अब मानों मैं इस संसार का कोई नहीं हूं। पक्षियों का गान, सूर्य की किरणें—ये आज मेरे नहीं हैं। नदी का स्निग्ध जल, नीला आसमान और सबों के लिए तो ठीक वैसा ही है, केवल मैं ही इनमें से चला गया हूं। वे छोटे-छोटे फूल, पेड़ की वह छाया, हाय, वे मेरे लिए नहीं हैं! इन सब पर आज मेरा कोई अधिकार नहीं है!

काले रंग की गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं जब गाड़ी में चढ़ने लगा तो दूर पर कोई कह रहा था, "उसको फांसी का हुक्म हो गया" मैंने उसकी ओर फिर कर देखा। एक व्यर्थ आक्रोश हृदय में धधक उठा।

गाड़ी चली। मैं उसके भीतर के एक छोटे से छेद में से बाहर के संसार को देखता जा रहा था। सड़क पर आदमी चले जा रहे हैं—ख़ासी चहल-पहल मची हुई है। उसमें कुछ भी फ़र्क नहीं आया है। मेरी मृत्यु से इन की कोई हानि नहीं है, कोई सहानुभूति नहीं है। हाय रे मनुष्य!

: ३ :

मृत्यु !

किन्तु हानि भी क्या है ? मनुष्य हमेशा तो जीवित नहीं रहता। एक दिन तो मरेगा ही। वह दिन और वह क्षण ही उसको अज्ञात है। बस, केवल इतना ही तो फ़र्क है। फिर क्यों मैं व्यर्थ ही घबरा रहा हूं ?

आज से लेकर फांसी के दिन तक कितने ही आदमी संसार छोड़ जायंगे ! मेरी फांसी देखने के लिए जो लोग दिन गिन रहे हैं, उनमें से भी कितने ही चल बसेंगे। फिर मैं अपने जीवन पर इतनी ममता क्यों कर रहा हूं ?

प्रकाश और हवा से न्यारा यह जेलख़ाना, कदर्य आहार, निस्संग जीवन, अपमान-पीड़ित हृदय, असभ्य और निष्ठुर पहरेदार —हाय, इस जीवन से लाभ ही क्या ? संसार में मेरे लिए करुणा का एक बूंद आंसू भी नहीं है। मैं रिक्त हूं, भिखारी हूं ! मेरी नाव की पतवार टूट गई। इस जीवन से क्या लाभ ?

काले रंग की बन्द गाड़ी मुझे जेलख़ाने में ले आई।

पहले जब जेलखाने को देखता था तो यह भारी मकान कुछ

ऐसा बुरा न मालूम होता था। न जाने कितनी बार उसी जेलख़ाने के सामने वाले मैदान पर बैठकर गीत गायें होंगे। मित्रों से गप्प लड़ाई होगी। किशोर जीवन के उन्मत्त उल्लास और आनन्द की स्फूर्ति के साथ चन्द्रालोक में बैठकर।इसी मैदान में अपने भविष्य-जीवन के मंसूबे बांधता था। कितनी उद्दाम कल्पनायें करता था! देखने में राज-प्रासाद-सा विशाल यह मकान, पास ही छोटी-सी नदी बह रही है, मानों एक सुन्दर चित्र है। लेकिन आज इसको देखने से भी हृदय घृणा से संकुचित हो उठता है।

मेरा कमरा! उसमें खिड़की नहीं है, केवल लोहे की छड़ें हैं। बड़ा भारी लोहे का दरवाज़ा है, और चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं। कहीं भी सौंदर्य का चिह्न नहीं है। और स्नेह! वह तो यहां से कोसों दूर है।

: ४ :

पत्थर की दीवार ने मानों मुझे अपने गाढ़ आलिंगन में बद्ध कर लिया। पहरेदार सतर्क दृष्टि से पहरा देने लगा। कोई भी कष्ट, कोई भी असुविधा न हो, जिससे मेरा यह अमूल्य जीवन अपने आप कहीं नष्ट न हो जाय। बहुत सावधान थे वे, कि मैं कहीं आत्म-हत्या न कर बैठूं!

ऐसे ही आदर और सम्मान के साथ मुझे अभी छः-सात महीने जीवित रहना है। उसके बाद वे मेरी इस देह को फांसी पर लटकाने के लिए, देवता के भेंट की भांति ही, जल्लाद के हाथ सौंप देंगे।

पहले दो—चार दिन,—सबका करुणा-सागर उथल उठा! मौत की आग में डालने के पहले मानों मेरी देह पर अमृत का सिंचन कर रहे हों!—परन्तु फिर वही पुराना बर्ताव!—कभी-कभी विद्रुम की स्निग्ध-धारा!

मेरी उम्र, शिक्षा और चेहरे ने इस समय कुछ मदद दी। पढ़ने-लिखने की आज्ञा मिल गई। सवेरे-शाम भगवान की आराधना करने का हुक्म मिल गया। पहरेदारों की नज़रबन्दी में कुछ घूमने की भी इजाज़त दी गई। और दो-एक अभागे क़ैदियों से बातें करने

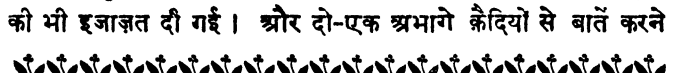

का मौक़ा भी मिला—वे यहां पर भी आनन्द से हैं। मैंने उनका अपराध पूछा। ओह उन लोगों की भाषा कैसी बेहूदी थी! किसी ने कहा, चोरी; किसी ने कहा, जाल; किसी ने कुछ, किसी ने कुछ! और वे इस तरह से कहने लगे, जैसे उनके वे काम बड़े बहादुरी के थे। उनकी धारणा कुछ अजीब ही थी और सान्त्वना की रीति भी अद्भुत थी।

फिर भी वे अपनी सहानुभूति मुझ पर प्रकट करते थे। यही सब थे मेरे एकमात्र साथी तथा मित्र! एक वह समय था, जब मैं इनसे हृदय से घृणा करता था; और आज इनसे बात करते हुए भी शान्ति मिलती है। ये यदि न होते, तो मैं पागल हो जाता। परन्तु क्या ये सचमुच ही मनुष्य नाम के योग्य हैं?

आह, बेचारे सचमुच ही अभागे हैं। जो साधु हैं उनका स्तोत्र तो सभी गाते हैं। जो धनी हैं, भाग्यवान हैं, उनके मुख से एक वाणी सुनने के लिए तो सभी आतुर रहते हैं। परन्तु जो इन अभागों को भाई कहकर छाती से लगा सकते हैं, न मालूम वे किस श्रेणी के मनुष्य हैं! उनका स्थान स्वर्ग के कितने ऊपर और कहां है? वे सचमुच ही उदार हैं।

और ये जो पहरेवाले हैं—वे भी सहानुभूति दिखाने आते थे। परन्तु उनकी सहानुभूति मानों परिहास था। दुर्दशा के पंजे में पड़कर ही आज मैं मनुष्य-प्रकृति को समझने लगा हूं। यह घृणित कैदियों का दल, इनकी सहानुभूति—व्यथित दृष्टि! वह कितनी पवित्र है! ये मुझ से घृणा नहीं करते! मेरे अपराध का परिणाम-निर्णय नहीं करते, आलसी दर्शकोंकी भांति गिद्ध-दृष्टिसे मेरी ओर नहीं ताकते।

सोच रहा हूं कि यदि इन बातों को लिख जाऊं तो बुरा क्या है ? बातें करने के लिए जब कोई साथी नहीं मिलेगा तब ये काग़ज़-कलम ही तो मेरे प्यारे साथी बन सकते हैं ! परन्तु लिखूंगा क्या ? मेरी इन व्यर्थ चिन्ताओं के ढेर को काग़ज़ पर सजाने से फायदा ही क्या है ? चारों ओर दीवारों की वेष्टनी में निर्जीव शृंखलित जीवन के सुख-दुख की माला मैं किसके लिए गूंथूं—मेरी यह माला कौन पहनेगा ? मैं आज इस संसार का मनुष्य नहीं हूं।—इस लोक और परलोक के बीचों-बीच एक स्थान पर खड़ा हूं। मैं किसका आश्रय मांगूं ? मेरा अब कौन है ?

फिर भी मैं अपनी व्यथाओं को वेदना की डोर में गूंथूंगा। मैं अपने व्यथित भावों को लिख जाऊंगा। देखकर लोग घृणा करेंगे ? करने दो। लोगों ने मुझे घृणा के सिवा और दिया ही क्या है ? मेरे दुःख में उनके हृदय में सहानुभूति जगी ही कब थी ? फिर मैं उनका भय क्यों करूं ? उनकी घृणा से मेरा अब क्या आता-जाता है ?

दिल के अन्दर एक आंधी चल रही है ! एक भीषण संग्राम हो रहा है। यह लड़ाई है कठिन और कठोर मौत के साथ !

जिसके जीवन के दिन बिलकुल गिन दिये गये हैं, उसकी अवस्था—ओह ! प्रकाश शीघ्र ही बुझा दिया जायगा। जीवन का प्रकाश भीबुझ जायगा। हां, शीघ्र ही !

पल-पल में जिस भीषण यन्त्रणा का सामना मैं कर रहा हूं—तुच्छ फांसी की रस्सी की यन्त्रणा क्या इससे भी अधिक है ? वह तो एक विराट मुक्ति का पथ दिखायेगी। इस बद्ध वायु और रुद्ध करुणा के ऊपर से विराट संकीर्णता का पत्थर तो एक वही हटा

देगी। उसके बाद !—आह, आशा और प्रकाश का अपूर्व राज्य —परन्तु यह सुन्दर संसार—ओह !

अच्छा ये लोग—जिन्होंने क़ानून बनाया है, क्या इन्होंने कभी यह भी सोचा कि मनुष्य को फांसी पर लटका देने का अधिकार मनुष्य को किसने दिया ? उसमें भी प्राण हैं, चेतना है, बुद्धि है, ज्ञान है ! एक पतली-सी रस्सी के सहारे पल भर में इन सबको नष्ट कर देना—साथ ही उसकी सब साध, उसकी सब आशा, उसका सारा प्रेम, विराट हृदय, सब को भस्मीभूत कर देना—यह कैसा नृशंस, कैसा अमानुषिक अनुष्ठान है ? परन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं। वे इन बातों को नहीं सोचते। उनकी आंखों के सामने नाचती है केवल एक रस्सी और गर्दन—बस ; और कुछ नहीं। प्रतिशोध को ही उन्होंने सर्वोच्च समझ रक्खा है।

इसीलिए तो मैं लिख रक्खूंगा ! अपनी इस वेदना को खेला-ऊंगा ! सफेद काग़ज़ों पर, इस क़लम के सहारे ! मन के भीतर जो द्वन्द्व चल रहा है, कोई उसे नहीं देखेगा, नहीं समझेगा ! तुच्छ शरीर की वेदना ! वह, दम घुट रहा है ! क्या कभी कोई इन काग़ज़ों को नहीं पढ़ेगा कि क्या-क्या कष्ट सहकर एक आदमी ने प्राण दिये हैं ? ईश्वर जनता है। शायद इन्हें कोई भी न पढ़े। शायद किसी दिन आंधी की हवा में उड़कर ये काग़ज़ बिखर जायंगे। सड़कों के किनारे और मोरियों में पड़े रहेंगे या कोई पंसारी इनसे पुड़िया बांधेगा। स्याही की शेष रेखा भी मेरे ही जीवन की शेष सांस की भांति नीरव और निर्जन में ही विलीन हो जायगी।

: ५ :

शायद कभी किसी की दृष्टि इन काग़ज़ों पर पड़े—तब ऐसा आन्दोलन शुरू होगा कि फांसी की प्रथा ही उठ जायगी। कितने ही निर्दोषों को, कितने ही अभागों को दुर्दशा के हाथ से छुट्टी मिल जायगी। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ होगा? मेरा जीवन तो उसके बहुत पहले ही फांसी की वेदी पर चढ़ा दिया जायगा!

प्राण निकल जायगा! मृत्यु हो जायगी! सूर्य का यह प्रकाश, वसन्त की यह स्निग्ध हवा, फल-फूलों से भरा हुआ यह विचित्र-संसार, रंगीला आसमान, सारे चराचर, हाय, मैं इन सबके बाहर चला जाऊंगा!

नहीं, मुझे अपनी रक्षा करनी ही होगी! अपने जीवन को बचाना होगा!

क्या किसी प्रकार भी इस मृत्यु की गति को मैं रोक नहीं सकता? आह, इच्छा होती है कि कारागृह की इस कठिन दीवार पर अपना सिर फोड़ लूं! निराशा और क्षोभ से फांसी देनेवाले हाहाकार कर उठेंगे और तब मुझे बड़ा आनन्द आयेगा!

अच्छा एक बार अपनी अवस्था पर शुरू से विचार कर लूं।

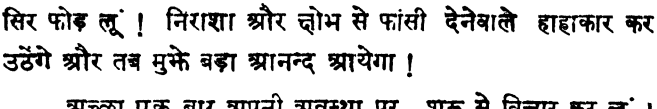

आज तीन दिन हुए मेरी सुनवाई खतम हो गई है। वकील कहता है, अपील करनी चाहिए! अन्तिम चेष्टा!

आठ दिन तक दरख्वास्त इस कमरे से उस कमरे में घूमती रहेगी। पन्द्रह दिन बाद कोर्ट में पहुंचेगी? उसके बाद नम्बर डलेगा, रजिस्ट्री होगी। फिर उस पर विचार होगा। पर अभी तो अपील करने की इजाज़त भी मिले या नहीं, इसमें भी सन्देह है।

फिर पन्द्रह दिन तक इन्तजार करना होगा। अधीर भाव से, प्रतीक्षा करनी होगी। फिर वही विचार का अभिनय! सरकारी वकील समझावेगा कि इस कैदी का अपराध यह है और वह है; अपील करना इसकी धृष्टता है; अपराध साबित हो गया है।

इस तरह छः हफ्ते बीत जायंगे।

सोच रहा हूं, एक 'विल' (वसीयतनामा) लिखूं! सोच तो रहा हूं, लेकिन व्यर्थ है मुक़दमे के खर्च में मेरी सारी जायदाद तबाह हो गई। जो कुछ रह भी गई है उसका वसीयतनामा लिखाने से शायद कोर्ट और भी कुछ दण्ड ले लेगा!

संसार में मेरी एक तो बूढ़ी माता है, किशोरी स्त्री है, और एक छोटी कन्या है। तीन वर्ष की छोटी-सी लड़की है वह। उसके लाल चपल ओठों पर हंसी तो हमेशा लगी ही रहती है। उज्ज्वल और नीली आंखें, घुंघराले केशों के गुच्छे, दो-चार मुक्त केश उसके मुख और आंखों पर उड़ा करते हैं। मानों फूलों पर लताओं का झालर झूलता हो। मैंने उसको छः महीने हो गये नहीं देखा! ओह, छः महीने हो गये।

मेरी मृत्यु से संसार में तीन नारी अनाथ हो जायंगी ! पुत्रहीन, पतिहीन, पितृहीन—तीन अभागिनी ! कानून के एक इशारे से तीनों का आश्रय टूट जायगा !

मुझको जो दण्ड मिल रहा है, यदि यह ठीक भी हो, तो भी इन असहायों ने तो कोई अपराध नहीं किया। इनपर यह आघात क्यों ? सरकार इसका क्या जवाब दे सकती है ?

लोगों की घृणा इनके जीवन की जो क्षति करेगी, उसके लिए तो सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की। फिर भी इसी का नाम विचार है। यही विचार की सुव्यवस्था है ! इस ढोंगपर मुझे हंसी आती है।

बूढ़ी माता के लिए मैं कातर नहीं हूं। उनकी जीर्ण देह को विदीर्ण करने के लिए यह धक्का काफ़ी है।

स्त्री के लिए भी चिन्ता नहीं है। वह तो वैसे ही बिस्तर पर पड़ी हुई है। चिर-रुग्णा है; रोग से उसका जीवन-दीप बुझने ही को है।—इस सम्वाद से उसके जीवन की अन्तिम रश्मि संसार में विलीन हो जायगी। हां, यदि वह पागल न हो जाय।

सुनता हूं पागलों का जीवन दीर्घ होता है। होने दो दीर्घ ! फिर भी मृत्यु ही की भांति उसमें विराम है, शान्ति है।

परन्तु मेरी कन्या—वह शान्त शिशु, आदर की कन्या मेरी—हंसी, खेल और गीतों में जो सब भूली हुई है। आह, अभागिनी नहीं जानती कि उसके सिर पर भी कोई आफत लटक रही है। वज्र की शिखा की भांति उसका जीवन भी पिस जायगा, दलित हो जायगा ! ओह, यही चिन्ता मेरी नस-नस को जला रही है।

: ६ :

अभी रात बाकी है ! आंखों में नींद नहीं। अंधकारपूर्ण कारागार ! एक शब्द भी कहीं सुनाई नहीं देता ! अब समय कैसे बिताऊं ! समय बिताने का साधन यहां कहां से आये ?

कमरे के एक कोने में लैम्प जल रहा था ! उसी को लेकर दीवार के चारों तरफ देखने लगा। कहीं ज़रा-सा भी छेद नहीं है ? बाहर की ठंडी हवा के भीतर आने का कोई छोटा-सा रास्ता ? नहीं।

दीवार में कितनी ही तरह की मूर्तियां अंकित हैं। कितनी ही भाषाओं में, कितनी ही बातें लिखी हुई हैं, कहीं खड़िया से तो कहीं कोयले से ! हाय, मेरे ही जैसे अभागे मन की व्यथा को इस पत्थर की दीवार पर लिख गये हैं ! उनके मर्म का सारा बन्धन टूट गया ! फिर भी इस पत्थर की दीवार ने सहानुभूतिका एक शब्द भी उनसे नहीं कहा। एक क्षीण प्रतिध्वनि भी नहीं की ! मूक, नीरव पाषाण इसी प्रकार निर्विकार खड़ा रहा ! उनके व्याकुल कण्ठ का आर्त्तनाद पत्थर से शरीर पर लग कर चूर्ण हो गया !

मैं उनकी व्यथा की बातें दीवार पर देखने लगा। एक साधन मिल गया। उनकी वेदना की माला को मैं ही आज आंसू भरकर

पहन लूं ! मृत्यु की बात फिर भी थोड़ी देर को भूल जाऊंगा !

ठीक मेरी शय्या के पास दीवार पर दो हृदयों को एक तीर से गूंथा है। यह एक चित्र है, शायद चित्रकार ने अपने हृदय के शोणित से ही उस पर लिख रक्खा था, "कलेजे की मुहब्बत !" हाय, बेचारे ने यहां बैठकर दिन-रात केवल मुहब्बत की बात ही सोची होगी। पास ही कोयले से किसी ने लिखा है, "सम्राट् की जय हो !" कितनी आशा, आकांक्षा और आश्वासन इन अक्षरों में भरा है !

एक तरफ किसी ने लिखा है, "मैं भाथिया को प्यार करता हूं !" और एक ओर केवल "ए" अक्षर और केवल सफेद खड़िया की एक रेखा ! अंधकार में भी चांदी के अक्षर की भांति ही वह चमक-रहा है !—"ए" शायद उसकी प्रियतमा हो; शायद उसका नाम "एमा" या "एडिथ" था ! हाय, इस एक अक्षर में एक व्यथा-कातर जीवन की कितनी बड़ी लम्बी सांस मिली हुई है !

मैं बैठकर सोचने लगा। मेरे इस निःसंग और निर्जन मुहूर्त में पत्थर की दीवार मानों करुणा से जाग उठी। उसने अपनी पत्थर की छाती में इतनी मर्म-व्यथा, इतनी गुप्त वेदना छिपा रक्खी थी ! आज कहां है वह अभागों का दल ! कहां है—उनकी भाथिया, एमा, एडिथ ! किस गुलशन की आड़ में, किस खिड़की के पास बैठकर वे आसमान की ओर देख रही हैं ! उनकी ठंडी सांस, उनकी विरह-व्यथा, उनका प्रिय-वियोग क्या समाप्त हो गया ? कौन कहेगा !

लैम्प उठाकर मैं देखने लगा ! दीवार के एक कोने पर, यह क्या ! यह तो फांसी का चित्र है ! किसने यह चित्र बनाया ! किस

मूर्ख ने इस प्रकार मृत्यु का आह्वान किया ! यह पृथ्वी, यह जीवन, क्या उसके लिए सचमुच ही आसरा हो गया था ? दो लकड़ी सीधी-सीधी खड़ी हैं। ऊपर दोनों के सिर से एक और लकड़ी बंधी है। बीच में रस्सी झूल रही है—मैं ध्यान से उसे देखने लगा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। लैम्प हाथ से गिर पड़ा। कमरा अंधेरा हो गया। ओह, कैसा भयानक और तीव्र अन्धकार था ! अवसन्न होकर मैं ज़मीन पर बैठ गया।

फिर टटोल कर मैं अपनी शय्या पर लेट गया। मन अस्थिर हो रहा था—इस पत्थर की दीवार पर लिखे हुए प्रत्येक चित्र और प्रत्येक शब्द को देखने की एक व्याकुल प्यास जग रही थी।

अन्धकार में दीवार टटोलने लगा। मकड़ी के जाले में हाथ लिपट गया। जाल से हाथ को मुक्त कर फिर बिछौने पर बैठ गया। नींद आने लगी। मैं सो गया। जब आंखें खुलीं तो कमरे में कुछ अस्पष्ट प्रकाश आ रहा था। फिर खड़ा होकर दीवार को देखने लगा। दीवार पर एक जगह चार नाम लिखे हुए थे,—दांतों १८१५; पूले १८१८; जिन मार्टिन १८२१; कास्तेंग १८२३। पढ़ने के साथ ही एक भीषण स्मृति मन में जाग उठी।

दांतों ने भाई की हत्या की थी। पिशाच पूलें ने अपनी स्त्री की हत्या की थी। जिन मार्टिन ने बन्दूक की गोली से अपने पिता का सिर उड़ा दिया था। और कास्तेंग—डाक्टर कास्तेंग ने अपने मित्र को ज़हर दे दिया था !

मैं कांप उठा। उनकी आखरी सांस अभी तक मानों इस

कमरे की हवा के साथ मिल रही है। इसी शय्या पर वे अपने खूनी जिगर की आखरी बातें, आखरी चिन्तायें उंडेल गये हैं। इसी कमरे में वे भी चलते-फिरते थे। आज भी उनकी सांस से यह कमरा गरम है।

उसके बाद मैं भी उनके पीछे यहां आया हूं! वे मानों चारों ओर से हाथ का इशारा कर मुझे बुला रहे हैं!—वह उनके गले की आवाज़ भी तो सुनाई दे रही है न? मैंने आंखें बन्द कर लीं। उनकी मूर्ति मानों और भी स्पष्ट हो उठी!

यह क्या सत्य है, अथवा स्वप्न है, या मति भ्रम—पैर में कुछ पानी का स्पर्श मालूम हो रहा है!—यह क्या?—मकड़ी—! —एक बड़ी मकड़ी को मैंने पैर से दबाकर मार डाला है!—इसी का जाल मेरे हाथ से फट गया था!—मुझे चेतना आई—अब तक मानों मूर्छित था! छाया-मूर्ति मेरे चारों ओर घूम रही है!

नहीं-नहीं, मन को स्वस्थ और सबल करना होगा! पल-पल पर मृत्यु की यंत्रणा! इसके कवल से उद्धार पाना ही होगा! दांतों और पूलें कब्र के नीचे सो रहे हैं। वे यहां नहीं आ सकते!—नहीं, कभी नहीं आ सकते! मैं क्यों व्यर्थ ही उनसे डरा जा रहा हूं? इस कारागृह से बाहर भागना तो फिर भी सम्भव है, परन्तु कब्र के नीचे से बाहर निकलना बिलकुल असम्भव है। तो फिर क्यों व्यर्थ ही मैं मरा जा रहा हूं?

: ७ :

दिन का उज्ज्वल प्रकाश ! चारों ओर एक कोलाहल की ध्वनि ! बड़े-बड़े दरवाजों के खुलने और बन्द होने का शब्द, चाबियों की खनखनाहट ! मानो यह कारागृह का उल्लास ! संगीत हो ! सभी आनन्द में मग्न हैं, सजीव हैं ! फिर मैं क्यों निरानन्द और उदास हूं ?

दरवाजे के पास से एक पहरेदार जा रहा था । उसको बुलाकर मैंने पूछा, "इतना शोर क्यों हो रहा है ? इतना आनन्द क्यों मनाया जा रहा है ?"

उसने उत्तर दिया—"नये कैदियों का एक दल आया है, उनके पैरों में बेड़ी पड़ेगी । तुम देखोगे नहीं ?"

संन्यासी की भांति यह वैचित्र्यहीन, अप्रसन्न, निःसंग जीवन से मैं उकता गया था । देखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका ।

बहुत सावधानी के साथ पहरेदार मुझे एक कमरे में ले चला । बैठने के लिए वहां एक कुर्सी भी नहीं थी । हां, एक बड़ी खिड़की जरूर थी । खुली हुई खिड़की । गरादों के भीतर से आज कई दिन बाद आसमान का एक बड़ा हिस्सा नजर आया । अहा, आसमान कैसा सुन्दर है ?

पहरेदार ने कहा "यहां से मजे में देखो; राजा की भांति आराम से देख पाओगे। कोई पास आकर भीड़ नहीं करेगा।"

कहकर दरवाजे को बन्द करता हुआ वह बाहर चला गया। ताले में चाबी लगाने का शब्द भी कान में आया। खिड़की से कारागार का बड़ा आंगन साफ दिखाई दे रहा था। आंगन के चारों ओर ऊंची दीवार थी। एक लम्बा दालान भी था, जिसमें असंख्य सिर-ही-सिर नज़र आ रहे थे। सभी तमाशा देखने खड़े थे। आंख और मुख पर आग्रह का चिह्न एक था—कुतूहल की एक विराट रेखा थी। नरक के प्रेत मानों आज मतवाले होकर नाच रहे हैं! सबकी आंखें आंगन की ओर थीं।

बारह बजे। आंगन का फाटक खुला। असंख्य नई मूर्तियां भीतर आयीं। साथ ही एक बुरा कोलाहल होने लगा। मानों पल भर में एक नई जान कारागार में भर गई। अट्टहास और चीत्कार से सारा स्थान गूंजने लगा।

कैदियों की नत-दृष्टि और पहरेवालों का वीर-दर्प—यह सृष्टि ही अजीब थी!

कैदियों का नाम पुकारा जाने लगा। उनका अपराध क्या है, दण्ड का परिणाम क्या है, सब पूछा जाने लगा। जिनके दण्ड का परिणाम अधिक है, उनके नाम के साथ जय-ध्वनि होने लगी। दर्शकों के हृदय में कुछ और ही आनन्द था। मानो क़ैदियों का एक दल विजयी-सेना है, जो अभी युद्ध जय करके लौट रही है। इसीलिए तो यह आनन्द का आयोजन है और इसी कारण तो यह ताण्डव-नृत्य हो रहा है। दो-एक दर्शक तो आनन्द के मारे गुलाटें तक खाने लगे।

उसके बाद क़ैदियों के दल में आपस की जान-पहचान है या नहीं, इसकी तलाश होने लगी। जिनमें जान-पहचान है, उनको अलग कमरे में रखना चाहिए—कहीं उनको कुछ शांति न मिल जाय; दण्ड की कठोरता कहीं कम न हो जाय!

चारों ओर का विचित्र कोलाहल एक अखण्ड रागिनी की झंकार की सृष्टि कर रहा था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि यह किसी माया-लोक की संगीत-ध्वनि है। परन्तु अत्यन्त ही अर्थहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन रागिनी थी वह। धीमी हवा मेरे मस्तक को स्पर्श कर रही थी। एक छोटी-सी आशा की किरण भी मेरे मन में न जाने क्यों जगने लगी। वह मीठी धूप, मुक्त-हवा, उदार आकाश—वही तो जीवन है!—इन सबसे दूर रहना—ओह, वह मृत्यु है!

अकस्मात हवा की भांति धूप हट गई। किसी ने मानों एक काला परदा उस पर डाल दिया। हलके बादल ने आकर पृथ्वी और धूप के बीच एक व्यवधान की सृष्टि की। स्वप्न के कुहक-जाल की भांति ही एक छाया ने आकर धूप की गति रोक दी। सहसा पानी बरसने लगा। आंगन से दर्शकों का दल हट गया। केवल घोंसले के खोये हुए पक्षियों की भांति ही कैदियों का दल असहाय-भाव से भीगने लगा। दो-एक व्यक्ति कांप रहे थे। परन्तु इससे क्या? कारण, वे कैदी हैं। आराम के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है।

जब पानी बन्द हो गया तब सब फिर सांकलों में जकड़ दिये गये। पैरों में बेड़ियां डाली गईं। कोई रोने लगा और ज़मीन पर लोट गया। एक आर्तनाद का स्वर! परन्तु मारे कोड़ों के सब सीधे कर दिये गये। ओह, कैसे पिशाच हैं ये!

बादल हट गया। सूर्य का प्रकाश फिर निकलकर मुसकराने लगा। मानों काले पर्दे को दोनों हाथों से हटाकर वह बाहर निकल आया हो, यह तमाशा देखने के लिए। भीतर से कैदियों का दल फिर निकल आया। कोई सीटी बजा रहा था और कोई गा रहा था।

अब भोजन की पारी है। भोजन की सामग्री आई। बड़ी-बड़ी बालटियां, उनमें फीका-सा कोरे जल का पदार्थ, स्वाद नहीं, गन्ध नहीं! भुक्त-भोगी को ही उसका ज़ायका मालूम है।

फिर भी वे—बेचारे भूखे—तृप्ति के साथ उसे खाने के लिए व्यस्त हो उठे। उसीमें उनको कम आनन्द नहीं था।

आग्रह के साथ मैं सब देख रहा था। अपना खयाल मैं भूल गया। चित्त में करुणा भर गई। आंखों में आंसू आ गए।

सहसा एक आवाज़ आई, "उठो; चलो!" कैदियों में शोर-गुल मच गया। वे सब खड़े हो गये। कतार बंध गई सब चलने लगे।

मेरी खिड़की के पास से ही वे जा रहे थे। मुझे देखकर वे एक बार खड़े हो गये। मेरी छाती धड़क उठी। क्या मैं अजायबघर का कोई जानवर हूं, जो इस प्रकार वे मेरी ओर ताक रहे हैं?

एक ने कहा,—"फांसी का आसामी देख लो। इसको फांसी दी जायगी।" चारों ओर एक हंसी की धूम मच गई। असभ्य पशु!

मेरे सिर में चक्कर-सा आने लगा। मानों मैं शून्य में लटक रहा हूं!

इन्होंने कैसे जान लिया कि मुझे फांसी का हुक्म मिल गया है?

"अच्छा आखरी सलाम दोस्त !" निर्लज्ज की तरह वे चिल्ला उठे। एक ने कहा, "हमसे तो अच्छे ही हो, शीघ्र छुट्टी मिल जायगी। मुझे तो अभी चौदह वर्ष यहां भुगतना है।"

मेरी चेतना लुप्त-सी हो गई थी। हिलने तक की शक्ति नहीं थी। आंखों के सामने नदी के स्रोत की भांति कैदियों का दल चला गया।

सहसा होश आया। मैं सिहर उठा। सोचा, इस खिड़की के बाहर कितना प्रकाश, कितना आनन्द है—और भीतर वायु, प्रकाश और प्राण सब रुद्ध हैं। यदि ये सीखचे न रहते—सीखचों को पकड़कर जी-जान से एक बार हिलाने की चेष्टा की! वे जरा भी न हिले। मुझे चोट आ गई। मैं क्रोध से गरज उठा। मेरा अन्तर विदीर्ण हो रहा था।

दूर से शोर-गुल की एक अस्पष्ट ध्वनि कान में आ रही थी। मैं वहां अवसन्न-भाव से बैठ गया। दूर का कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण हो गया। मेरे जीवन पर मानों कोई एक काला पर्दा धीरे-धीरे डाल रहा था। मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा।

: ८ :

आंखें जब खोलीं उस समय रात हो गई थी। मैं निवाड़ की खाट पर सो रहा था। बत्ती जल रही थी। कमरा बहुत बड़ा था और खाटों की कतारें लगीं हुई थीं! मैं समझ गया कि मैं अस्पताल में हूं। चारों ओर बिलकुल निस्तब्ध शान्ति!

कुछ देर तक तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया। जाग तो रहा था, परन्तु चेतना नहीं थी।

पहले जेलखाने के इन अस्पतालों से मैं कितनी घृणा करता था, परन्तु आज मैं वह मनुष्य नहीं रहा। एक मैली-सी चादर! रोगों की तीव्र दुर्गन्ध! चारों ओर परिपूर्ण अशान्ति! एक मूर्तिमना विभीषिका! मैंने आंखें बन्द कर लीं—निद्रा के शीतल स्पर्श से सब यंत्रणाओं को भूल गया।

अचानक नींद खुल गई। देखा, दिन निकल आया है। बाहर से शोर-गुल की आवाज सुनाई पड़ रही थी। मेरी खाट बिलकुल खिड़की के पास लगी हुई थी। खिड़की से मैंने बाहर की ओर देखा, कैदी लोग काम पर जाने की तैयारी कर रहे हैं। उनकी बेड़ियों का झनझनाहट शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा है। सुना, सबेरे ही एक

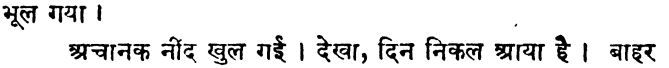

व्यक्ति को फांसी लग चुकी हैं—उत्सुक दर्शकों का दल, वही देखकर, हल्ला करता हुआ लौट रहा था। निर्लज्जों को हल्ला करने में शर्म नहीं मालूम होती। एक आदमी की जान चली गई और ये आनन्द से चिल्ला रहे हैं! इनके सिर पर गिरने के लिए आकाश में क्या वज्र का अभाव हो गया है?

: ६ :

मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरा भाग्य ही ऐसा बुरा है। मुझे अस्पताल छोड़ना पड़ा। फिर कारागृह का वह बन्द कमरा, मेरी ही लम्बी सांस की गरम हवा से भरा हुआ, चारों ओर निराशा और विषाद का निरानंद और विमर्ष-भाव—इसी कमरे में जीवन की अंतिम घड़ियां गिननी पड़ेंगी।

कोई भी बीमारी नहीं! यह तरुण, स्वस्थ और सबल देह—रोग के ग्रास से वह जीर्ण क्यों होने लगा? नसों के भीतर से गर्म खून तेजी से चल रहा है; ऐसी बुद्धि, ऐसा स्वास्थ्य—मन फिर क्यों पल-पल में विचलित हो रहा है? क्यों वह जला जा रहा है!

अस्पताल से लौटने के बाद केवल एक बात कभी-कभी सोचने लगता हूं। वहां से भाग जाने का अच्छा मौका था, वह मौका मैंने मूर्ख की भांति क्यों छोड़ दिया? क्या अच्छा और आसान मौका था वह! रात के निस्तब्ध अन्धकार में चुपचाप निकल सकने पर—क्या ही मुक्त-स्वाधीनता के उदार राज्य में मैं पहुंच जाता? सिर के भीतर नसें धिक-धिक करने लगीं। आंखों के आगे चारों ओर हरे गोले तैरने लगे।

यदि भाग जाता ? अहा ! उसमें, इनका क्या नुकसान था ? अपील से यदि छूट जाऊं ? परन्तु उसकी सम्भावना कहां है ? गवाहों ने सौगंध खाई है --विचार काफी तौर से हो गया है। अब अपील से क्या फल होगा ? कुछ नहीं। हाय, सब व्यर्थ है, फांसी की रस्सी ही मेरे भाग्य में बदी है। अपील की क्षीण आशा ? वह अत्यन्त कमजोर है।

यदि आज क्षमा मिल जाय ! क्षमा ? परन्तु क्यों मिलेगी ? असंख्य अभागे—बोझा ढोकर, बेड़ी खींचकर जेल में सड़ रहे हैं--सड़ा हुआ भोजन खाकर पेट की ज्वाला को बुझा रहे हैं। इनका परिवार, कुटुम्ब, मित्र कहां हैं ? इनके घर की दशा क्या है ? ये इस यंत्रणा को समान भाव से भोगते रहेंगे और मुझे क्षमा मिल जायगी, मैं आनंद के साथ घर लौट जाऊंगा ! क्यों, मुझे किस कारण वे क्षमा करेंगे ? देश के लोग इस अन्यायपूर्ण क्षमा को देखकर क्या कहेंगे ? नहीं क्षमा नहीं; फांसी ही मेरी मुक्ति का एकमात्र उपाय है !

हां, यदि भाग जाता ! हरे-हरे खेतों से, छोटी-छोटी पहाड़ियों-पर से नदी-वन अतिक्रम कर किसी अनजान देश की ओर चलता रहता ! किसी की ओर नहीं देखता, किसी के दरवाजे पर नहीं ठहरता ! कहीं भी भीख नहीं मांगता ! पेड़ के फलों से क्षुधा की निवृत्ति, नदी के जल से तृष्णा का निवारण, पक्षियों के गीत में विश्राम, तरु-तल पर निद्रा ! लोकालय में ? नहीं—यदि कोई सन्देह करे ? यदि पकड़े ? मैं भागता थोड़े ही !—उससे तो उनका शक बढ़ जाता ! धीरे-धीरे निश्चिन्त-भाव से कितने ही शहर-कस्बे-गांव पार कर जाता। एक गुप्तवेश कहीं से जुटा लेता। मेरे गांव के पास वह जो झाड़ी है,

वहीं जाकर पहले विश्राम करता। उस झाड़ी में मैंने कितनी ही रातें जगकर बिताई हैं, कितने ही दिन वहां खेलकर काटे हैं! बचपन में हमजोलियों के साथ वहां वह आंख-मिचौनी का खेल! हंसी, दिल्लगी, मज़ाक! अहा, कैसे सुन्दर दिन थे वे! उस अतीत का एक पल भी कहीं आज मुझे मिल जाय!

हां, फिर जब अंधेरा हो जाता तब सड़क पर निकलता, भिन्सेन जाता! नहीं भिन्सेन कैसे जा सकता था? रास्ते में बहुत बड़ी नदी है, पार होना कठिन है। तो आपजिन जाता! नहीं, शायद जर्मनी जाना ही ठीक होता—वहां से हेमर, हेमर से इङ्गलैण्ड! परन्तु यदि उस समय पुलिस पकड़ लेती, पासपोर्ट मांगती तो? बड़ी आफत होती।

हाय, अभागा हूं। मैं यह क्या सोच रहा हूं? स्वप्न-भ्रांत जीव, तीन फुट मोटी इस दीवार को लांघना सम्भव कहां? हाय-हाय, कोई उपाय नहीं है—नहीं है! मृत्यु ही अब मेरी साथिन बनेगी!

उस बचपन की याद आ रही है, जब मैं बालक था। इसी जेल में फांसी देखने के लिए आता था। ओफ़, कितनी भीड़ जमती थी! और आज?

: १० :

लैम्प बुझनेवाला था। अभी सबेरा हो जायगा! गिर्जे की बड़ी घड़ी में टन्-टन् कर छः बज गये!

पहरेदार ने आकर टोपी खोलकर सलाम किया। नम्रकण्ठ से पूछा, 'कुछ खाने की इच्छा है या नहीं?' आश्चर्य! ऐसा विनय-नम्र व्यवहार! मेरा सारा अंग कांप उठा! तो क्या आज ही?

हां, आज! जेलर स्वयं आये थे! मुझे क्या चाहिए इसी की जांच करने। और भी उन्होंने पूछा मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करता? मेरे सम्मान की हानि तो कोई नहीं करता है न? मेरा स्वास्थ्य कैसा है? रातको नींद तो अच्छी आती होगी? हर-एक बात के साथ महाशय कहकर सम्बोधन कर रहे थे! कोई भी सन्देह न रहा आज, तब आज ही, वह स्मरणीय दिन है! जिस दिन की बात एक पल के लिए भी नहीं भूला था।

जेलर अथवा उनके कर्मचारीगण, कोई त्रुटि कैसे कर सकता है, मेरे प्रति खराब व्यवहार कैसे कर सकता है? हंसी की बात है! वे केवल कर्तव्य की पूर्ति कर रहे हैं। सतर्क भाव से मेरी निगरानी कर

रहे हैं। मेरे प्रति किसी ने कोई बुरा आचरण नहीं किया। मुझे इसीसे सन्तोष करना चाहिए।

और यह जेलर—यह भला आदमी कैसी मीठी-मीठी बातें करता है, मधुर दृष्टि से देखता है,—हाः-हाः, दीर्घबलिष्ट बाहु! कारागृह का यही एक प्रतिबिम्ब है! मालूम होता है यही जीवित पत्थर का एक जेलखाना है! यहां की सब वस्तुयें जेलखाने का ही रूपांतर हैं! पहरेदार, लोहे की गरादें, पत्थर की दीवार—सब! चाबी और ताले तक जीवित मालूम होते हैं—सब मिलकर मेरा पहरा दे रहे हैं! और यह कारागृह—निष्ठुर कारागार, आधा पत्थर और आधा मानव-देह विशिष्ट—मुझको मानों इसने जकड़कर बांध रक्खा है! लोहे का हृदय लेकर मुझ से आलिंगन करने आ रहा है। दरिद्र अभागा हूं मैं! मुझ से यह दिल्लगी क्यों करते हैं?

: ११ :

चित्त शान्त है। कुछ भी फिकर नहीं है। दुविधा भी नहीं है। जेलर आकर देख गये हैं। उनसे मिलने के बाद मैं अच्छा ही हूं। पहले मन में जो थोड़ी-बहुत आशा थी भी वह मैंने अब छोड़ दी है—यह केवल उन्हीं के कहने से।

साढ़े छः या पौने सात बजे होंगे। अकस्मात मेरे कमरे का दरवाजा खुल गया। एक बहुत सफेद बालवाले बूढ़े आदमी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने अपना भारी काला कोट खोल डाला और बैठ गए। कपड़ों से मैं समझा कि यह महाशय कोई आचार्य हैं।

मेरे सामने ही वह बैठे थे, सिर हिलाकर उन्होंने आकाश की ओर देखा। इस दृष्टि का अर्थ मैं समझ गया। उन्होंने कहा, "क्या तुम प्रस्तुत हो गये हो बच्चे?"

शांत स्वर से मैंने उत्तर दिया,—"नहीं, प्रस्तुत तो ठीक नहीं हूं—परन्तु हां, अभी उठने को तैयार हूं।"

मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी। ललाट पर पसीना आ रहा था।

प्रस्तुत—एक दम प्रस्तुत,—परन्तु किसलिए ? मेरी छाती कांप उठी ! प्राणों के अन्दर एक विकट ध्वनि—शब्द होने लगा !

आचार्य बहुत-कुछ कह रहे थे—उनके ओंठ हिल रहे थे, हाथ-पैर और गर्दन भी साथ-ही-साथ हिल रहे थे। वे क्या कह रहे थे, यह मुझे नहीं मालूम; कारण, कोई भी बात मेरे कान के भीतर तक नहीं पहुंचती थी।

फिर दरवाजा खुला। अब जेल के अध्यक्ष स्वयं उपस्थित हुए। शरीर पर एक लम्बा काला कोट, हाथ में कागज़ों का पुलिन्दा-सूरत पर एक दुःख का भाव लाने की चेष्टा कर रहे थे।

जेलर ने कहा,—"अदालत से खबर आई है।" एक बिजली मेरे सारे शरीर में दौड़ गई।

मैंने पूछा,—"क्या ? अदालत मेरा सिर अभी मांगती है ? वह तो मेरे लिए गौरव की बात है। मेरे इस सिर पर सरकारी वकील को कुछ विशेष लोभ है—यह मैं खूब जानता हूं। हां, मैं बिलकुल प्रस्तुत हूं।" वह पुलिन्दा खोलकर कागज़ों को पढ़ने लगे,—वही अदालत की जटिल भाषा—विकट और दीर्घ शब्दों की झंकार—जिनका अर्थ कहीं मुश्किल से ही कोई समझ सकता है। आध घंटे तक कागजों को खस-खस करने के बाद उसका अर्थ समझ में यह आया कि मेरी अपील मंजूर नहीं हुई है। अच्छी बात है ?

कागज़ों पर से आंखों को न उठाकर ही उन्होंने कहा—"प्ले दी ग्रीव्ह में फांसी होगी। साढ़े सात बजे हमलोग कांसियाजारी जेल की ओर रवाना होंगे। कृपया आप भी हमारे साथ चलें।"

कुछ देर तक मैं चुप रहा, किसी की बात का उत्तर नहीं दिया। जेल के अध्यक्ष और आचार्य में खूब बातें हो रही थीं। देश की मामूली चर्चा हो रही थी, वे उसी चर्चा में तन्मय थे।

ठीक इसी समय दरवाज़ा खोलकर चार हथियारबन्द पहरेदार कमरे में घुस आये। देखने में वे यमदूत से मालूम होते थे। सलाम करके उन्होंने कहा, "समय हो गया है।"

मैंने कहा—"मैं तैयार हूं;—चलो।" उन्होंने कहा—"आध घण्टे के भीतर ही रवाना होना पड़ेगा।" कहकर वे कमरे से बाहर चले गये! एक बार अन्तिम चेष्टा! भगवान, सचमुच ही क्या कोई आशा नहीं है?

भाग जाऊं? हां, जैसे भी हो भागना पड़ेगा! दरवाजा, खिड़की, छत, सब को पारकर जैसे भी हो भागना पड़ेगा! यदि देह के मांस को भी रख जाना पड़े तो वह भी स्वीकार है। केवल हड्डियों को लेकर ही भागूंगा।

यदि कहीं से कोई यन्त्र या अस्त्र मिल जाय! राक्षस की भांति बल से मैं सब का उच्छेद कर जैसे भी हो—परन्तु मेरे हाथ में एक कील भी तो नहीं है—अभागा हूं—आशा नहीं है!

: १२ :

मैं कासियारजारी जेल में आया। अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में! रास्ते की बात भी सुन लो!

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए, महाशय!"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी! मैं उठकर उसके पीछे हो लिया! सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था। फिर भी चला! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा। इतने दिनों का आश्रय! कुछ ममता हो रही थी। आज इस कमरे को मैं सूना कर चला। परन्तु अधिक देर के लिए नहीं—संध्या तक जरूर कोई नया मेहमान इस कमरे में आ जायगा! वाह रे विधाता का विधान!

आंगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन शेष करने की फिक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे साथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल में मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले

हुए आंगन के बीचोंबीच खड़ा था। सांस लेने में कुछ आराम मिल रहा था। परन्तु कब तक ?

बाहर गाड़ी खड़ी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहा आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिंग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे। मालूम हो रहा था कि किसी ने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो! दो अलग-अलग दरवाजे थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर। गाड़ी के भीतर अंधेरा तो था ही, साथ ही, धूल और कूड़ा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलखाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था! इस कब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। इस मुक्त-आकाश की स्मृति को लेकर अंधेरे सागर में कूद पड़ूंगा! दरवाजे के सामने कतार बांधकर दर्शक लोग खड़े थे। टपाटप पानी पड़ रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिन भर बन्द न होगा। रास्ता और आंगन कीचड़ से लथ-पथ हो रहा था!—चारों ओर कुछ उदासी-सी नजर आती थी।

गाड़ी पर चढ़ा। सामने के कमरे में हथियारबन्द पहरेवालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं!

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुड़सवार! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था!

गाड़ी चली। पानी से सड़क के पत्थर निकल आये। घोड़े की नाल में खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज के साथ जेल का फाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानों कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी मानों मुझे जीते-जी कब्र में गाड़

दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोड़े के गले में घण्टा बंधा हुआ था—पहिये और घोड़े की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानों आंधी की पीठ पर सवार होकर मैं कहीं जा रहा होऊं—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्न-लोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में!

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसी में से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था! खैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुम्बज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा—"वाह, ऊपर से चारों ओर एकबार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकनेवाला तो कोई था नहीं। आचार्य की आवाज से घोड़ों की नालों की आवाज में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतन्त्र-भाव से नहीं—एक अजीब मिश्र-रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो!

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती।"

उनका कहना ठीक था—बिलकुल ठीक था।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी!—हां, क्या कह रहा था? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया सम्वाद भी है? शायद मेरी फांसी का हुक्म सुनकर ही यहां हल्ला मचा होगा।

आचार्य कहने लगे--"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फ़ुर्सत भी नहीं मिलेगी। संध्या के समय मैं रोज़ अख़बार पढ़ा करता हूं, उससे दिन के ढलने तक का समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मज़ेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम नहीं है?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है।"

उसने कहा—"आपको मालूम है? ताज्जुब की बात है। कहिए तो सही!"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हां, अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप क़ैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय-सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोक कर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और क्या बात ? क्या कहते हैं आप ? आपको कैसे मालूम हुआ ? किसने कहा आपको ? कहिए तो सही क्या ख़बर है, सुनूं, ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था ?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच्-चच्! बड़े दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परन्तु जी को ढाढ़स दो। मन को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं ? कास्तेगां को जब हम यहां लाये थे तो वह सारे रास्ते हंसता-हंसाता आया था!"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापामा को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रुवले के वे विद्रोही लड़के ऐसे हंसते-चिल्लाते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख तो पाना पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही दुखी मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र! क्या कहते हैं आप ? आप से मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा दस वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हंसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते हो, मेरी उम्र तो तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गम्भीर भाव से कहा—"नहीं, मज़ाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूं।"

आचार्य ने सुंघनी की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज होने की कौन-सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी सुंघनी की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सारी सुंघनी गिर गई। घबराकर खाली डिबिया उठाते हुए आचार्य जी बोले—"राम राम! सारी सुंघनी गिर गई, अब क्या करूं!"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है! आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मज़ाक को, बड़े तुच्छ करनेवाले आये!—तुम्हें दुःख भी क्या है! मैं ठहरा बूढ़ा आदमी—बिना सुंघनी के इतना रास्ता कटना—हाय-हाय!"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनकी सुंघनी गिर गई है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण!

सुंघनी के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम होकर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आखिर गाड़ी शहर के भीतर, चुंगीघर के सामने, आकर ठहर गई। वहां से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम मेढ़ या बकरे होते तो यहां दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु

अफसोस कि हम आदमी थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुंची, जो सीधी कांसियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अखबार बेचनेवाले इधर-उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम कांसियारजारी आ पहुंचे। सामने ही विराट् जेलखाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक देखकर मेरा खून ठण्डा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठाकर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अंधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरेदारों ने आकर दोनों तरफ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर कतार बांधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक ख़ासी भीड़ जमा थी।

: १३ :

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा, मानों मैं स्वाधीन हूं—क़ैदी नहीं हूं। परन्तु जब सीढ़ियों को पार करता हुआ उन अंधेरे कमरों की ओर जा पहुंचा उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे! आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था?

हम जेलर के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हंसी आई—मेरे कैसे प्रियजन को इसने सौंप दिया है।

जेलर महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार से उन्होंने कहा—"ज़रा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हूं।"

ठीक ही तो है,—जमा-खर्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते में कैसे जमा कर सकते हैं! उस समय वह किसी और अभागे क़ैदी की भाग्यलिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा, तब तक मैं भी अपने काग़ज़ों को सम्हाल लूं।"

काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसी में तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नज़र आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था, मानों आकाश के शरीर को किसी ने रंग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहां मैं खड़ा हूं, और मेरी स्त्री और कन्या! वे भी इसी आकाश के नीचे हैं! न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं!

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले आया, उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था! उसमें दो खिड़कियां थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। एक खिड़की के पास आकर मैं बैठ गया।

कब तक बैठा रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या, एक और आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज़्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मज़बूत मालूम हो रहा था; आंख और मुख पर विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था; परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अर्जी, किस चिन्ता में निमग्न हो। मैं कब से बैठा हूं और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आखें फाड़कर देखने लगा!

उसने कहा—"मेरी ओर क्या देख रहे हो? मैं एक लगेज हूं—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने-तक की देर है।'

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ?"

बड़ी ज़ोर से क़हक़हा मारकर वह हंस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे? मामूली बात है! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैंने तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूं।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा, भाई! इससे सुनो; मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊं? वक़्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मजेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फांसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूं। तक़दीर की बात है!

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब मां-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी तक किसी को नहीं

मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मजे से अपना पेट भरने लगा। आखिर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम में जब चारों ओर बरफ़ से रास्ते और गलियां भर जाती हैं, उस बरफ़ पर से भी मैं नंगे पैर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैं पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो-चार दिन की सज़ा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी क़द्र बढ़ गई और मैं दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ—सारी दूकान लूट ली, दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विभीषणों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलखाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही नहीं आती! उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुकदमा खत्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुंह सूख गया। खैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक-दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। वहां खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसी को कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगों से मुलाक़ात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले आदमी भर्ती किये।

"उसके बाद खूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़ लूट, रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े! आनन्द का फव्वारा छूटने लगा!—किन्तु फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकड़े जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह कांपने लगा। मैंने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। 'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ करो सरदार!'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती' को मैं माफ नहीं कर सकता।"

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा गुलाम हूं।"

"विश्वासघाती गुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूं।" कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक ज़ोर से लात मारी। वह पांच हाथ दूर जा गिरा। मुंह से खून उगलने लगा। मैंने कहा—'उठ, चल।'

"उसे मैं ले चला। तब—ओह, मैं एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!"

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी जल रही थी। मैं वहां से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में जाकर उसने इज़हार दिया और एक दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मुझे फांसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। ख़ैर, जनता के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द भी नहीं मिलता। काफ़ी अक्ल खर्च करता था। वैसे अक्लमन्द और हिम्मतवाले साथी भी अब कहां मिलते हैं? इसी-लिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनंद की बात नहीं है। और भी एक-दो चोरी के क़िस्से सुनाता हूं। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमन्द था! मेरी ऐसी अक्ल को फांसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात जरूर है। पर, ख़ैर देश का दुर्भाग्य!"

उसकी बातें सुन कर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो! राम-राम; फांसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफ़सोस हो रहा है। इसी में तो मज़ा है, यह नहीं मालूम? मौज करो, आनन्द करो, लोग जानेंगे कि हां, फांसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देख कर सब अवाक् और स्तंभित हो जायंगे। बहादुर

कहेंगे। मुझे देखो न ? कैसे मज़े में हूं ! आखिर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा हासिल होगा ही नहीं !"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं !"

क़हक़हा मार कर वह फिर हंस उठा। उस हंसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूंज उठा। उसने कहा—"ओहो 'महाशय', आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद नहीं था ! लेकिन महाशयों को फांसी दी जाती है—यह बड़े अचम्भे की बात है !"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलंब है ! अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फांसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुन्दर कोट क्या व्यर्थ ही ख़राब करेंगे ? मुझे दे दीजिए ! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाच कर चुरुट मंगाने की तदबीर करूंगा।"

मैंने कोट खोल दिया ! ठण्ड से शरीर कांपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिये, आप पहन लीजिए, अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं बर्दाश्त कर लूंगा, कोट आप ले लीजिए !"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलट कर उसे देखता रहा, फिर बोला; यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। ख़ैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय ! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय जेलर भीतर आये ! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—"भूलना नहीं महाशय, यहां यही आख़री मुलाक़ात है, फिर छः हफ्ते बाद मिलेंगे। वहां आप मेरा इन्तज़ार करना।"

उसकी बातों को सुन कर मेरा हृदय कांप उठा। क्या कहता है यह ? पागल है या बेवकूफ ?

: १४ :

वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया ?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैंने सोचा वह मज़ाक कर रहा होगा, फिर मुरब्बत के ख़याल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है ! पैरों से जिसको कुचल सकता हूं वह मुझे मित्र के नाम से सम्बोधन कर गया ?

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया ! मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भांति वह मुझे पोस डालेगी। अभी तक धनी सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में भरा है ! मूर्ख हूं मैं ! बेवकूफ़ हूं !

फांसी की डोरी धनी और निर्धन का विचार न करेगी। जिस राज्य में जा रहा हूं, वहां धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोरी उसके गले में पड़ेगी, वही डोरी मुझे भी पार पहुंचायेगी ! मुक्ति देगी ! हां, वह मेरा मित्र ही तो है ! परम-मित्र है !

: १५ :

वायुहीन रुद्ध एक छोटे-से कमरे में फिर मैं बन्दी हूं। बन्दी हो गया हूं, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति यह अन्याय क्यों करता है? यदि सज़ा देना ही उनका उद्देश्य हो तो इससे भी कम खर्च में और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग में जो होता था एक थैली के भीतर बन्दकर नदी में डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी ज़बर्दस्त तैयारी और कड़े पहरे की बहुत-सी मेहनत बच जाती।

कमरे में बिस्तर नहीं था। मैंने चौकीदार को बुलाकर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी ओर देखता रहा—मानों आसमान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो शख्स छः घण्टे बाद फांसी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या ज़रूरत?

जो हो, उसी समय कमरे में जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बड़े दयालु हैं। मरते समय कम-से-कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरूंगा। कमरे के दरवाज़े पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फांसी अपने आप न लगा लूं—सरकार के जल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठूं!

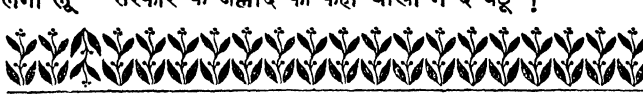

: १६ :

ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी! छः घण्टे बाद मैं कहां रहूंगा और यह पृथ्वी कहां रहेगी? अस्पताल की मेज़ पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे सांस लेंगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है।

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नहीं कहा जा सकता कि यह मुझ से घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा में कुछ भी त्रुटि नहीं हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने न देंगे! करुणा—परन्तु कैसी निर्मम-करुणा है यह! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी! अभागिनी बेटी! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थी। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थी। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होठों के भीतर से हंसी का फव्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हंसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर

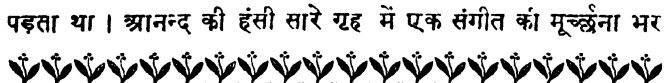

देती थी। उसके बाद रात को सोने से पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थी। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेग-पूर्ण थी! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा! हाय, आज वह सब स्वप्न—में परिणित हो गया! हाय, प्यारी बेटी! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा—उस तरह तुम्हारा कौन आदर करेगा? सब के छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हंसते हुए जायंगे, उस समय तुम्हारी आंखों में वेदना के आंसू डबडबायंगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख को म्लान कर देगी। व्यथित आंखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायंगी! नवः वर्षारम्भ और अपने जन्म-दिन पर तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हायरी मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन, अनाथिनी मेरी!

यदि वे जूरी एकबार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्यु-दण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख्याल होता। उसके म्लान-नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई सन्देह नहीं है—नहीं, कोई सन्देह नहीं है। मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी! जब वह बड़ी होगी, जब होश संभालेगी, सब बातें समझने लगेगी तब मैं कहां रहूंगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलङ्क-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण

कांप न उठेगा ! मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी ! प्यारी बेटी मेरी। पिता के नाम पर सहानुभूति के दो बूंद आंसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी, तुम दो बूंद आंसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊंगा—केवल दो बूंद आंसू ! हाय भगवान, कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है, कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर-भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहां रहूंगा ? इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है।

बाहर यह कोलाहल कैसा हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौड़े आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, स्पर्धित प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सबका आग्रह एक साथ जग उठा है। मत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझ को ! —जो मैं इस समय बैठा हुआ हूं, सांस ले रहा हूं, बातें सुन रहा हूं, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हूं, वही मैं ! मर जाऊंगा !

: १७ :

ये बातें क्या मैं नहीं जानता ? हां जानता हूं ! प्लेदीग्रीव्ह के पास से जा रहा था—वह बहुत दिनों की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई।

रास्ते पर हजारों की भीड़ इकट्ठी थी ! गाड़ी में से मैंने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है ! चारों ओर अनगिनती खोपड़ियां नज़र आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह खाली न थी। दूर पर फांसी का तख्ता भी नज़र आता था। फांसी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है ! परन्तु आज मैं दर्शक नहीं हूं। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है ! वैसी ही भीड़ जमेगी।

केवल एक डोरी को अवलम्बन बनाऊंगा—साथ ही पलक मारते-न-मारते एक अतल-स्पर्श अंधकार के भीतर घुस जाऊंगा। विराट् अन्धकार; उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता !

माफ़ी ! अरे मुझे माफ़ी दे दो, मुझे क्षमा करो !—शायद माफ़ी

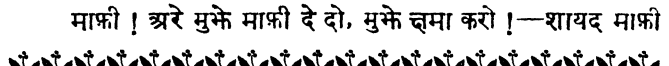

मिल भी जाय ! राजा को दया आ जाय तो—शायद माफ़ी की ख़बर लेकर दूत आता होगा ! आओ दूत ! जल्दी आओ ! यह सारा अन्धकार अचानक गायब हो जायगा। एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य में मैं प्रवेश करूंगा ! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा।

मुझे प्राणों की भिक्षा दे दो ! स्नेह और ममता में भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता। मेरी रक्षा करो। गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कहीं जाने मत दो—बीस वर्ष, पच्चीस वर्षतक मुझे जेल में बन्दकर रक्खो। केवल इस आसमान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो। क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बातें करता है; वह भी सुखी है। केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो। बस, और कुछ नहीं चाहता।

———

: १८ :

आचार्य लौट आये। सफेद बाल, नम्र-प्रकृति और मीठी-मीठी बातें! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे कांच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उन को देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस वीभत्स दृश्य के भीतर उनसे कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर!

उन्होंने कहा—"भाई!"

उनके सम्बोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया!

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथोलिक धर्म—क्या इस पर तुम्हारी श्रद्धा है?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं; कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिये। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं आऊं, कहो ?"

"मैं कहला भेजूंगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदुकण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊं परन्तु नास्तिक नहीं हूं। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात क्या सुनायगा! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहां है ? इसकी सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शांति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं सामने रटे हुए वाक्यों को बकना जिसका पेशा है, क्षुब्ध-आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ? भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाजी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राजधर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ! अफ़सोस !!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने-गिने रुपयों के

लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही उसकी जीविका का अव-लम्बन है। नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए ! परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी सांस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रही हैं। मुख से विष निकल रहा है। मैं क्या करूं, भवितव्य कठिन है।

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया। यही मेरे इस जीवन में आखिरी खाना होगा।

खूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता ! नहीं, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा !

: १६ :

सिर पर टोपी ओढ़े एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नहीं है! हाथ में गज़ का फीता और बग़ल में काग़ज़ों का बंडल! आते ही वह दीवार नापने लगा। 'अच्छा पांच फुट! यहां बदलना पड़ेगा,' इत्यादि बातें वह एक पहरेदार से कहने लगा और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले से सुना, वह एक ठेकेदार है। जेलखाने का नया संस्कार होगा, वह इसीका नाप ले रहा है!

काम ख़तम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फांसी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह एकटक मेरी ओर देखता रहा!

उसने कहा—"छः महीने के बाद इस जेल को पहचानना मुश्किल हो जायगा! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का सारांश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूं कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है—!"

उसके मुख पर एक सूखी हंसी भी दिखाई दी। पहरेवाले ने

उससे कहा,—"यहां खड़े होने का हुक्म नहीं है! आपका काम हो गया तो बाहर चलिए!"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को वह फ़ीते से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भांति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मज़ेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो!

पहरेवाले ने कहा, "क्योंजी तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी है या नहीं?"

मैंने कहा, "नहीं।"

मेरे स्वर में एक तीक्ष्णता थी!—फिर भी वह हटने वाला थोड़े ही था! उसने कहा, "एक बात कहता हूं सुनो!"

मैंने कहा, "मैं अधिक रसिकता नहीं सह सकता!"

उसने कहा, "मैं अत्यन्त दुखी आदमी हूं, भाई! बड़ा ही अभागा हूं। यदि तुम मुझपर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूंगा।"

"सदा के लिए! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही ख़तम हो जायगा।" मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो? देखते नहीं, मैं मरने जा रहा हूं। इस समय मैं किसी का क्या कर सकता हूं!"

फिर भी वह छोड़ने वाला कब था—बोला, "अजी, सुनो भी तो!" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों में समझ लो। बड़ा ही ग़रीब हूं मैं—यह काम बड़ी मेहनत का है—और तनख़्वाह भी कम है,—

उसपर अपने पास एक घोड़ा भी रखना पड़ता है ! नौकरी में सुख तो ऐसा ही है। इसीलिए भाई साहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट खरीद लेता हूं ! आखिर जीवन में कुछ करना तो चाहिए न ! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष में लाटरी के टिकटों में इतना रुपया खर्च कर डाला, परन्तु एक पैसा भी लाभ न हुआ ! अगर ७६ नम्बर का टिकट खरीदता हूं, तो ७७ नम्बरवाला बाज़ी मार लेता है; और ७७ नम्बर खरीदता हूं तो ७६ या ७८ नम्बरवाले की तक़दीर खुल जाती है ! ख़ैर, तो, अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो ?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा—"क्या सोचा है ?"

उसने कहा—"शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय !"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा—"मेरे द्वारा सुविधा !"

उसने कहा, "हां, सब तुम्हारे ही हाथ में है ! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्य, वर्तमान सब देख पाता है ! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही। इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नम्बर बतला दो तो उसी नम्बर का टिकट खरीदूं ! बस, रातों दिन बड़ा आदमी बन जाऊं। इस नौकरी को छोड़ दूं और खूब गुलछर्रे उड़ाऊं !—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न ? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम कासेंपायिकर है। बी नम्बर बारक, २६ नम्बर का पलंग—याद रहेगा न ? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हां भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा !"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी ! परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एक बार आखरी कोशिश ! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हां-हां, और कह क्या रहा हूं ?"

मैंने कहा—"अच्छी बात है । मैं तुम्हें बहुत धन दूंगा, यदि एक काम कर सको ।"

उसकी आंखें लोभ से चमक उठीं । उसने कहा—'कहो अभी करूंगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूंगा ।"

मैंने कहा—"केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी ।—बस और कुछ नहीं ।"

"बस; यही काम ! ओह अभी करता हूं ।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा ।

मैं उठ खड़ा हुआ । छाती धड़कने लगी । एक मिनिट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा । ओह भगवान—धन्य हो तुम ! पल भर के अन्दर कल्पना-क्षेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं भी बाधा नहीं है—मुक्त-आकाश के नीचे मैं खड़ा हूं—सिर के ऊपर से पक्षियों का दल गीत गाते हुए उड़ रहा है । स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानो मैंने अनुभव किया । वह—एक जीवन ही नया था !

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया । कहा—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो ?"

गले को साफ़कर मैंने कहा, "और तुम्हें रुपया काहे का दूंगा ?"

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का खून गर्म हो गया।

उसने कहा—"नहीं, यह कैसे हो सकता है? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है--मरकर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भागकर—अरे, राम-राम!"

मैं बैठ गया। पैर कांप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है! निराशा की गम्भीर वेदना में सांस तक रुकने लगी।

: २० :

दोनों हाथों से मुंह ढंककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बातें याद आ रही थीं। स्वप्न की भांति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बातें! दुर्भावनायें और दुश्चिन्ताओं का भारी कांटा, साथ ही वे बातें—मानों शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर!

प्रफुल्ल-मुख, निश्चिन्त हृदय उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे कैसे मधुर दिन थे! बगीचे में दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य! उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य में नवीन प्रकाश का उन्मेष! निराले कानन में वह मेरी तरुणी बाला!

बड़ी-बड़ी आंखें, लम्बे केश, गौर-वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेया! बगीचे में हम दोनों खेलते थे—हंसी, गीत, गपशप!

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शांत और मधुर! घोंसले से पक्षी चुराकर जब मैं धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आंखें मेरी ओर देखती रहती थीं। उस दिन उसने कातर-भाव से कहा, "क्यों तुम घोंसले से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो? अहा! तुम बड़े निर्दय हो।"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया! कहां तो मेरी प्रशंसा करनी

चाहिए, और यह कर रही है मेरा तिरस्कार ! क्रोध से उस पत्ती को उसी के मुंह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी मां ने पूछा, "तेरे मुंह पर यह काहे का दाग़ है ?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह साथ-साथ नदी-किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी तेज़ ! तीर पर नदी की तरंगों को देखते थे--संध्या उतर आती थी, चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु-संगीत की भांति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बातें थीं—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी-कभी लज्जा से उसका मुख लाल हो उठता था—नहीं, लाल नहीं, शायद गुलाबी !

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक़्त बग़ीचे में बादाम के पेड़ के नीचे हम बैठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर उसके हाथ में दिया—स्पर्श से हाथ कांप उठा !

पेया कह उठी—"आओ ज़रा दौड़ें।" केश के गुच्छे झालरों की भांति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर कुछ अजब लाल रंग था ! लाल बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी।

एकाएक वह बैठ गई। ललाट पर मोती की भांति पसीने की बूंदें। मैं उसकी बगल में आकर बैठा। वह हांफ रही थी। सांस कुछ रुक रही थी। मैंने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढ़ो! अभी उजेला है—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब में होगी?"

मेरी जेब में एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कंधे पर सिर रखकर वह उसे पढ़ने लगी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ थी; उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढ़ने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा—"तुम सुन भी रहे हो या नहीं?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फ़ुर्सत ही कहां थी।

उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया। उसकी सांस का स्पर्श मैंने अपने गालों पर किया। साथ ही हम दोनों के ओठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हंस रहा था।

घर लौटकर, वह अपनी मां से बोली—"मां आज हम दोनों बहुत दौड़े हैं।" मुझ से कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यों हो?"

चुप क्यों हूं? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय में बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर संध्या की बात इस जीवन में कभी भूल नहीं सकता।

यह जीवन—सायं, अब कितनी देर को है?

: २१ :

मालूम नहीं क्या बजा है। सिर के अन्दर चिन्ताओं की राशि कोलाहल कर रही थी।

अपराध की बात सोचते ही कांप उठता हूं—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है।

सजा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहां है? मृत्यु की बात को छोड़कर और सोचने का अवसर भी कहां है? अतीत की बात सोचने पर भी फांसी की रस्सी आंखों के सामने नाचती है। वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फांसी के तख्ते पर लोट पड़ेंगे? अतीत और वर्त्तमान के बीच एक-रक्त सागर का व्यवधान रह गया। जो मेरी जीवनी पढ़ेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोड़ेगा। परन्तु सचमुच ही क्या मैं ऐसा ही बुरा हूं? नहीं, कभी नहीं।

कुछ ही घण्टों में सारी चिन्ताओं और भावनाओं का अन्त हो जायगा, फिर भी उन दिनों को बीते अभी बहुत समय नहीं हुआ, जब नदी के किनारे पेड़ों की छाया में, ऊपर से झड़े हुए पत्तों को रौंदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था।

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियों के सुख-गुंजन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख-दुख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर चल रहे होंगे। फेरी वाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कुंज में युवक अपनी प्रियतमा को आलिंगन में आबद्ध कर प्रगाढ़ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फव्वारा चारों ओर छूट रहा होगा। और मैं ?—

पुरानी बातें ही याद आती हैं। नौटरडम में घंटा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अंधकार में टेढ़ी-मेढ़ी असंख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर में चक्कर आ गया था। ऊपर चढ़कर देखा, सारे पेरिस शहर को मानों किसी ने गलीचा बनाकर पैरों के तले बिछा दिया है !

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था ! मैं शहर देखने में तन्मय था। उस ऊंचे मीनार पर से नीचे सड़क पर चलने वाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने मालूम होते थे। वही सब मैं देख रहा था, कि भीषण शब्द के साथ वह घंटा बज उठा। आवाज़ से मीनार कांप उठी—मेरे हाथ भी कांप उठे। मैं ज़मीन पर बैठ गया। घंटे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रतिध्वनि उस वक्त तक गूंज रही थी !

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घंटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारों ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसें धक्-धक् कर रही हैं। छाया की भांति अपने चारों ओर मैं देख रहा हूं, असंख्य नर-नारी हर्ष

और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। वह ध्वनि उन्हीं की उल्लास-ध्वनि है न!

मिला-होटल के ऊंचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। प्लेदीग्रीव्ह के कठोर पत्थर की दीवारों की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी वह दीवार—वह पुरानी घड़ी—इसकी प्यारी सखी मालूम होती है।

जिस दिन किसी का जीवन फांसी की डोर पकड़कर अज्ञात-लोक के विराट्-अन्धकार में लटक पड़ता है, उस दिन प्ले दी ग्रीव्ह के सब दरवाज़ों के सामने असंख्य पहरेदारों की कुतूहल-दृष्टि जम जाती है। अभागे मृत्यु-पथ के यात्री ही उस व्यग्र-दृष्टि के लक्ष्य, दृष्टियों की आग में ही अपनी सारी कहानी ख़त्म—कर देता है—और संध्या की झुरमुट में होटल की वह ज्वलन्त घड़ी चन्द्रमा की भांति हंसती रहती है।

एक बजकर पन्द्रह मिनट!

मेरी इस समय की हालत! सिर में असहनीय यंत्रणा! किसी ने मानों सिर में आग लगा दी है! जब बैठता हूं या उठ खड़ा होता हूं, तो मालूम होता है कि सिर के अन्दर एक रुद्ध नदी का सोता कल-कल करता हुआ बह रहा है। मानों सिर के बांध को तोड़कर अभी बाहर निकल पड़ेगा।

एक आतंक से अंग में रोमांच हो रहा है। अंगुली से क़लम गिरना चाहती है। हाथ में बिजली की तरंग।

आंखों में आंसू डबडबा रहे हैं, मानो मैं धूमाच्छन्न कमरे में बैठा हूं। शरीर के जोड़ों में एक दर्द! अब केवल पौने तीन घंटे बाकी

हैं—फिर तो बस हमेशा के लिए आराम मिल जायगा। वह एक तीव्र सुख होगा।

लोग कहते हैं—यंत्रणा! वह कुछ भी नहीं है—विज्ञान में ऐसा कौशल है कि मरते वक्त मुझे कुछ भी कष्ट न होगा! क्या सचमुच?

छः घन्टे का यह कष्ट! इससे क्या मृत्यु का कष्ट अधिक होगा? यह जो पल-पल बीत रहा है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि वेदना की असंख्य सीढ़ियों को पार करता हुआ मैं मृत्यु की ओर दौड़ रहा हूं। यह वेदना—यह यंत्रणा—असहनीय है।

फिर भी, यह कुछ नहीं है?

नस-नस से खून मानों चू रहा है। छाती पर एक भारी पत्थर रख दिया गया है—ओह, सांस बन्द हो रही है!

कैसी यन्त्रणा, कौन समझेगा—और, समझायेगा भी कौन? फांसी के बाद यदि वह धड़हीन सिर आकर उस वेदना को समझा सकता, तो विज्ञान की सब तारीफ़ ताक पर धरी रह जाती।

आंखों को पलक मारने की भी फुर्सत न होगी—सब शेष हो जायगा; एक मुहूर्त्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन! वे कुतूहली दर्शक, ये अनगिनती राज-सैनिक, ये भला उस यन्त्रणा को क्या समझें? वह भीषण डोर एक मिनिट के अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित होकर स्तब्ध हो जायगा! समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायेगा। हाय अभागे! उस भीषण द्वन्द्व में ही सारा खेल खत्म हो जायगा। भीतर के साथ बाहर का प्रबल संग्राम—ओह, कैसा भयंकर होगा?

राजा की बात भी बार-बार याद आ जाती है। मन से यह चिन्ता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती! दोनों कानों में मानों कोई कह रहा है, "राजा! इस समय इसी शहर के एक बड़े भारी महल में सजे-सजाये कमरे के अन्दर वह बैठे हैं। मेरी ही भांति असंख्य पहरेदार उनके दरवाजे पर खड़े हुए पहरा दे रहे होंगे।" फ़र्क क्या है? वह प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही फ़र्क है। उसके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण, महिमा मण्डित, यश और उल्लास से भरा-पूरा है। चारों ओर प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर झर रहा है। उनके सामने तीव्र स्वर शांत हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आंखों के सामने स्वर्ण और रौप्य की सामग्री चकाचौंध लगा देती है। सभासद-वेष्टित राजसिंहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—संभ्रम लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत! केवल मुंह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठेंगे!

राजा! वह भी मेरी ही भांति खून और मास का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, यह राजा! फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फांसी रुक सकती है! जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य, गृह के सारे सुखों को पल भर के अन्दर प्राप्त कर सकता हूं—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा! हाय रे दया की परिभाषा!!

: २२ :

तब आओ साहस ! मृत्यु के डर को भगाओ। काहे का डर ? काहे का आतङ्क ? आओ मृत्यु, मैं हंसते हंसते तुम्हारा स्वागत करूं—खुशी से—तुम्हें आलिंगन करूं। आओ, तुम चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, बस आ जाओ !

आंखों को बन्द करते ही देखूंगा, उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर खिल रहा है। मेरी आत्मा उस प्रकाश के हौज़ में स्नान करने को बढ़ रही है ! सिर के ऊपर उल्लास से भरा हुआ अनन्त आकाश पर मानों उस शुभ्र प्रकाश के शरीर पर काले तिल ही हों ! मखमल की भांति कोमल आकाश पर मानो हीरे के टुकड़े बिखरे हुए हैं। उस समय वे ऐसे न रहेंगे !

या शायद, अभागा मैं यह देखूंगा कि उस विराट् अन्धकार में मेरा सिर-हीन धड़ पड़ा हुआ है और क़ब्र के चारों ओर भूत प्रेतों का उपद्रव मचा हुआ है। वह फांसी की हवा से संसार के एक कोने का परदा फट गया है। दानवों का दल बड़े समारोह के साथ उसमें घुस रहा है। चारों ओर कंकाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है। सिर के ऊपर आसमान में भी अंधेरा है। तारे आग के परिन्दे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं।

मेरे पहले जिन्होंने फांसी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं; उनकी छाया मैं अभी भी देख रहा हूं। रक्त-हीन शीर्ण-देह, धंसी हुई आंखें, सूखा हुआ मुंह—क्या ही भयानक है! प्रकाश और अंधकार के बीच खड़े होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हंसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतङ्क—एक अधीर उद्वेग! कहीं कुछ नज़र नहीं आता। मीला-होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। संसार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं!

इसी तरह की बातें हृदय के भीतर द्वंद्व मचा रही हैं। एक मिनिट को भी नहीं छोड़तीं।

हाय, क्या यह मृत्यु है? कौन है यह? आत्मा के साथ इसका ऐसा विरोध क्यों है? एक आघात से वह जब देह को धूल पर लिटा देती है—तब मन की यह चेतना, यह अनुभूति; यह प्रेम, स्नेह, दया, यह सर्वव्यापी चित्र इन सब को वह कहां उड़ा देती है? पृथ्वी—कठोर को क्या इतनी सी भी ममता नहीं है? क्या इसमें वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु को जीत कर हाथ से बनाये हुए जीवों की रक्षा करे? मेरे भगवन्, तुम्हारी यह सृष्टि-लीला कैसी विचित्र है? कैसा निष्ठुर है यह रहस्य? कैसा निर्मम खेल है, यह!

: २३ :

एकबार निद्रा-देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानों सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन में यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी!

स्वप्न देखा।

स्तब्ध गम्भीर रात! दो मित्रों के साथ बैठक में बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है!

बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था—कोई जग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द हुआ, और मैं चौंक पड़ा! देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं!

चारों ओर ढूंढ़ डाला। कोई नहीं है—किसी का चिह्न तक नहीं!

चिमनी के पीछे वह क्या है। कौन?

एक नारी—रूखे बाल मुंह के चारों ओर बिखरे हुए—मुखपर एक कठिन भाव! आंखें उसकी बन्द थीं! मैंने पूछा, "तू कौन है?"

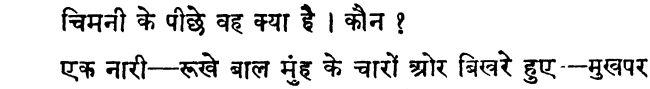

उसने कुछ जवाब न दिया। हम लोगों ने कहा—"जल्दी बता तू कौन है ?" फिर भी चुप ! आंख अभी भी वैसी ही बन्द ! मित्र ने कहा—"उसके मुंह पर रोशनी डालो।" मैंने बत्ती उठाकर उस के मुंह की ओर की। फिर भी चुप ! मैंने कहा—"बात क्यों नहीं करती ?" फिर भी अचंचला ? हम लोग परेशान ! राम कैसी आफ़त है यह !

मित्र ने कहा—"रोशनी को और पास लाओ।" मैं बत्ती को बिलकुल आंखों के पास ले गया। उसने आंखें खोल दीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैंने आंखें बन्द कर लीं। साथ ही आंख में कुछ जलन हुई। फिर आंखें खोलकर देखा तो जेलखाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खड़े हैं !

मैंने पूछा—"क्या मैं बहुत देर तक सोया हूं ?" उन्होंने कहा—"हां, एक घण्टे सोये हो। तुम्हारी लड़की को मैं लाया हूं, मेरी को। देखोगे नहीं ? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी, जब तुम नहीं जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा—"मेरी ! मेरी लड़की मेरी ! कहां है वह ? जल्दी बतलाइए ! लाइए, उसे मेरी गोदी में दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लूं।"

: २४ :

मेरी ! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी !

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हज़ार बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आंखों में वह कैसा भाव ! मानों अत्यन्त कातर है ! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खड़ी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकार कर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी !"

अत्यन्त मृदु-भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने अपना मुंह हटा लिया, और कहा, 'आह ! आप छोड़िए मुझे !"

'आप !'

क़रीब एक साल बाद यह साक्षात् ! इस एक वर्ष में मेरी मुझ को भूल गई। मेरी बातें, मेरा सुख, मेरा आदरभाव, सब उसके मन से कहां उड़ गये ! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या ?

मेरी ये मूंछें, सिर में जटा के बाल, शीर्णमुख, क़ैदी की पोशाक, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी ?

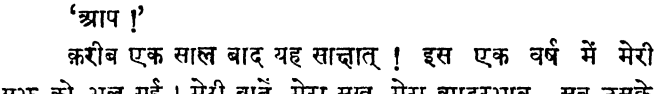

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है ! हाय रे मेरे भाग्य !!

आज मैं उसका 'बाबू' नहीं हूं। अपनी बेटी के मुंह से मीठा-सम्बोधन, फूल की पंखुड़ी की भांति उसके हास्यमय मुख में वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मैं उससे भी वंचित हूं !

कैसा दारुण अभिशाप है !

इस समय जीवन के इस रोष-मुहूर्त्त में एक बार, केवल एक बार, उस सम्बोधन के बदले, अपनी बेटी के मुंह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लूं, तो चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हंसते हुए विसर्जन कर दूं।

"मेरी !—" उसके दोनों हाथों को दबाकर कहा, मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती ?"

अपनी तेज़ आंखों को उठाकर, कुछ गुस्से से उसने कहा, "नहीं !"

मैंने कहा—"देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हूं !"

उसने कहा—"कौन हैं आप, मैं क्या जानूं। होंगे कोई भले आदमी !" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर !

हाय, संसार में जिसकी ज़रा-सी हंसी देखने के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं, उसी के मुंह से यह कैसी बात ? उसकी आंखों में यह कैसी दृष्टि ?

मैंने पूछा—"मेरी, तुम्हारा पिता है ?"

उसने कहा—"है ! क्यों ?"

मैंने कहा—"कहां है, वह ?"

मेरी ओर देखकर उसने कहा—"वह; कहिए !"

हाय, मेरी प्यारी बेटी ! हाय रे, शीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता ! मैंने फिर पूछा—"कहां है, वह ?"

मेरी की आंखें सजल हो गईं। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा—"स्वर्ग में !"

मैंने कहा—"स्वर्ग में ! जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहां है ? स्वर्ग का अर्थ क्या है ?"

मेरी की आंखों से आंसू टपक रहे थे, मैंने पुचकारा।

मैंने कहा—"मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा—"नहीं, महाशय, दिन-दोपहर में बिना काम उनको विरक्त नहीं करना चाहिए। ठीक संध्या के समय मैं प्रार्थना करूंगी।"

मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था ! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है ! हाय, आज यह मेरी नहीं रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हूं। नहीं-नहीं,—जैसे भी हो इसे समझाऊंगा कि मैं ही उसका 'बाबू' हूं। स्वर्ग में नहीं, नरक में नहीं, उसके सामने, इसी जेल के अन्दर। मैं फांसी के लिए बैठा हूं।

मैंने कहा—"मेरी तुम पहचानतीं नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूं।"

मानों कुछ डांटकर उसने उत्तर दिया—"नहीं--"

मैंने कहा—"प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गईं ? देखो, अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानियां सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा—"आह ! छोड़ दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा—"पढ़ सकती हो ?"

"हां !"

एक अख़बार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी—"प्राण-दण्ड का मुलज़िम—"

अकस्मात् मैंने काग़ज को छीन लिया। अख़बार वह अपने साथ लाई थी ! अखबारवालों ने मेरी फांसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी जिससे किसी की नजर उस पर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूं। यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा काग़ज लाओ, मैं जहाज बनाऊंगी।"

आया के हाथ में अख़बार को लौटाकर मैंने कहा, इसको लेती जाओ, और घर पर कहना·····।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देश भेजूं ! खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया ! आंखों को अपने दोनों हाथों से ढंक लिया !—सिर के रक्त का श्रोत भीषण रूप से नाच रहा था !

कहां हैं वे यमलोक के भयानक दूत ! आने दो, अब क्या है ! ससार में मेरा कोई नहीं है—जीने की अब इच्छा भी नहीं है। जिस सांकल में मैं इस संसार के साथ बंधा हुआ था,—वह सांकल टूट गई। फिर अब यह माया—ममता क्यों ?

———

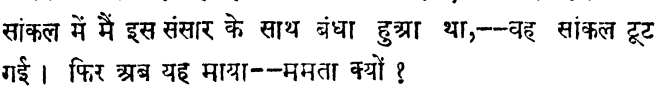

: २५ :

आचार्य के हृदय में भी दया है, जेलर भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आंखों से भी आंसू की बूंदें टपक पड़ीं।

शेष—अब सब शेष! केवल साहस और बल! पथ पर वियुक्त जनता—फांसी के तख़्ते के निकट बढ़ना—उसके बाद कहां रहेगा संसार— और, कहां रहूंगा मैं?

कोई हंसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायेगा, कोई चिल्लाएगा! फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों में भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं। आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमें से कोई-न-कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायंगे—!

'मेरी प्यारी मेरी!'

नहीं, वह तो आया के साथ चली गई! गाड़ी की खिड़की में से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को ज़रूर देखेगी। समझेगी कुछ तमाशा होगा। इस "भले आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नहीं जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस

तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नहीं है, उसी का वह 'स्वर्गवासी जादू' है।

उसके लिए मैं लिख जाऊंगा। एक दिन वह पढ़कर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हां, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊंगा! सारी बातें लिख जाऊंगा—मेरा इतिहास—क्यों आज देश की छाती पर रक्ताक्षर से मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी में लिखूंगा!

: २६ :

मीला-होटल के कमरे से—

मीला-होटल !.....मैं अब यहां आ गया हूं। वह स्थान—वह है मेरी इस खिड़की के नीचे। बहुत आदमी इकट्ठे हुए हैं। कोई चिल्ला रहा है ; कोई सीटी बजा रहा है ; कोई हंस रहा है।

लाल रंग के उस खम्भे को देखकर छाती कांप रही है।

वे कौन जा रहे हैं ? शायद समय हो गया। अब विलंब नहीं है। सारी देह कांप रही है। छः घण्टे से—छः महीने से जिस बात की चिन्ता लगातार कर रहा हूं, वह मुहूर्त्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी !

एक छोटे कमरे में लाकर उन्होंने मुझे खड़ा कर दिया। खिड़की के अन्दर से आसमान नज़र आ रहा था।—चारों ओर कुआं-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों में लोहे का ठण्डा स्पर्श ! कैंची का शब्द ! बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे ! आस-पास सबकी कानाफूसी ! डाढ़ी मूंड दी गई।

आंख उठाकर देखा काग़ज़ और पेन्सिल लेकर एक आदमी

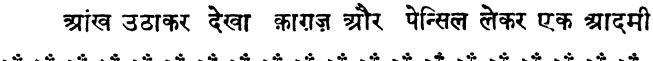

प्रश्न कर रहा है। समझा, अख़बारों का प्रतिनिधि है! कल के अख़बार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है। अख़बारवालों की चांदी है—ख़बर ज़बरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकड़ा। मैं आचार्य के पीछे-पीछे चला।

बाहर का दरवाज़ा खुल गया।

लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज़ आई 'वह, वह, वह है!' सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है!—वाह-वाह, खूब!

किसी ने कहा—"नमस्कार महाशय!" किसी और ने आवाज़ कसी, "आदाब अर्ज़ है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा!"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हंसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से 'क्रॉस' लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्‌गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—औरतों के मित्र हो!"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुखी थीं।

सहसा मैं कांप उठा—सामने ही वह फांसी का तख़्ता! टनन्-टनन् करके चार बज रहे हैं।